ORIGINAL ARTICLE
ISSN:-2249-894X
Review Of Research

शरीर कविता फसलें और फूल : सामूहिक चेतना का आग्रह

सारशं :

भवानी प्रसाद मिश्र की काव्यकृति 'शरीर कविता फसलें और फूल' धरती से जुड़ने की, जोड़ने की पहल है। कवि ने इसमें सामूहिक चेतना का आग्रह किया है। इस आग्रह में शब्द और कर्म का अद्धैत प्रस्तुत करते हुए मनुष्य को सजग होकर, सरल होकर प्रकृति से जुड़ने का आव्हान किया गया है। कवि की यह प्रौढ़ कृति १६८० की है।

कला जोशी

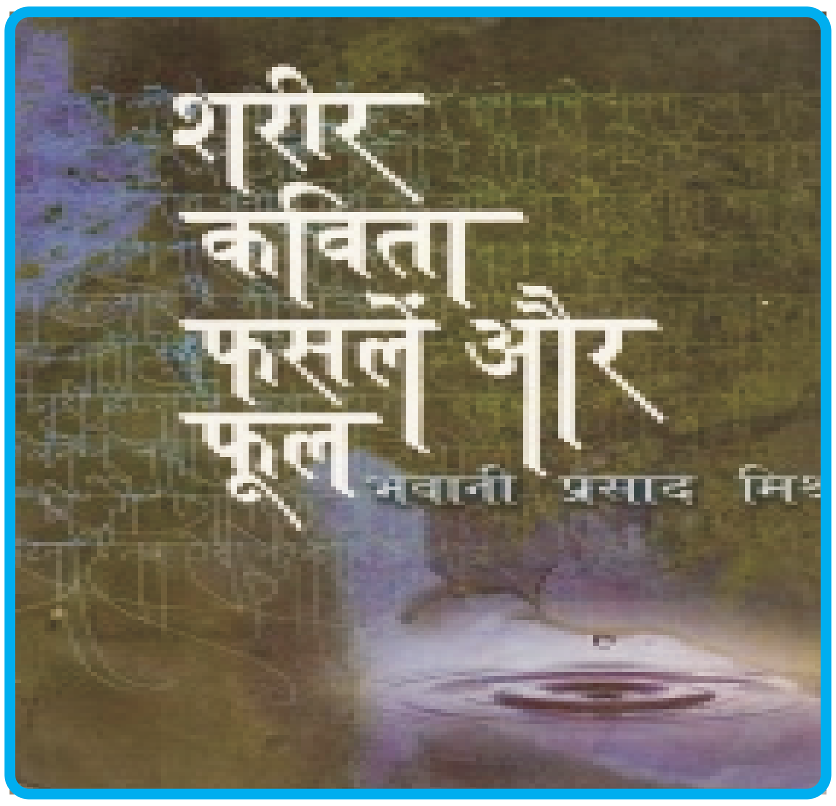

2

1.प्रस्तावना :

कवि के इस परवर्ती काव्य में श्रम की महत्ता, मानवीय दृष्टिकोण, आस्थावादी स्वर तथा शब्द, अर्थ और विचारों की एकरूपता के दर्शन होते है। जिस श्रम से धरती की गोद में फसलें लहलहाती हैं, उसी श्रम की कलम से शब्दों की फसलें मानवता को हरहराती हैं। झरने की कल-कल हो, या वृक्षों की सरसराती हवा की चुप्पी के स्वर, सब शब्दों में ढलकर कविता रचते हैं। आस्था की, श्रम की, मानवता की यह काव्यकृति धरती के गान हैं।

आओ धरती पर आओ/आज लहरों पर नहीं/
हमारे साथ धरती पर गाओ
लहरों पर नाच नहीं सकते हम/दल के दल
संग-साथ नाचना/धरती का सुख/इसे सच्चा करो
ओ पानी के अभ्यासी/धरती को जल की तरह
निर्मल करो अच्छा करो।[1]

को निर्मल करने में श्रम की महती आवश्यकता है। कर्म करने से ही जीवन में सुखद स्थितियाँ निर्मित होंगी। सूर्य की तरह हममे भी आग हो, जो जीवन देती है। हम इस योग्य बने कि सूर्य का प्रकाश ले सके। इसके लिए स्वेद बहाना होगा।

सूर्य की आगमनी में/हम प्रकाश के योग्य बन जायें
यो ही बैठे न रह जायें हक्का-बक्का/दिन हो जाने पर
दिन चढ़ने तक/पसीने से सन जायें।[2]

मानव चेतना और मानव मुक्ति ही साहित्य का लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हर रचनाकार अपनी एक दृष्टि और विचारधारा लेकर जूझता है। कवि जनजीवन से अछूता नहीं रह सकता और उसका लक्ष्य अंततोगत्वा मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा ही होगा। हर क्षेत्र में रचनाकार बंधनों से मानव की मुक्ति के लिए छटपटाता है। भवानी मिश्र भी कविता में आदमी को ही केन्द्र बिन्दु मानते हैं। वे प्रकृति के वैभव को इसलिए दुलारते हैं कि वह आदमी को रूप, स्नेह देने में समर्थ है -

पहाड़ों की रेखा, वनों की छाया, फूल के रंग
सब आदमी से मिलते हैं
यही सब लेकर आदमी के
रूप स्नेह शक्ति खिलते हैं।[3]

प्रकृति ने हमें कितना दिया है। मिश्र जी के काव्य की शक्ति यही है। जन्म से ही नर्मदा का गत्यात्मक सौन्दर्य और विंध्या का हरापन साथ रहा उनके। वे प्रकृति के दृश्यों से जीवन बोध की भूमि पर आते हैं। उनके शब्द धरती से उपजे हैं। चाँद-सूरज सभी बारी-बारी हस्तक्षेप करते हैं उसमें -

उदय होते चाँद/अस्त होते सूरज
मुरझा रहे फूलों की तरह
देखो इन सबको/इन पर/आत्मा का रंग है
तुम भी/रोज-रोज/पीले हो रहे हो
याने शरीर से अधिक/हो रहे हो/आत्मा
समझो/आत्मा उभर रही है/शरीर/क्षर हो रहा है
समूचा ब्रह्मांड/तुम्हारा घर हो रहा है।[4]

सबकी अपनी गति है। फिर-फिर चलने का संबल भरते हैं। सूर्य या चांद या फूल किसी एक के लिए नहीं हैं। इनका अस्त होना, मुरझाना अपने को पहचानना है, आत्मा के रंग में ढलना है। सम्पूर्ण ब्रह्मांड का यही सच है, वह तुम्हारा घर है। जिस दिन मनुष्य इस बात को समझेगा उस दिन शरीर क्षरित होकर विशुद्ध आत्मा हो जायेगा। जन्म से मरण के बीच बहुत कुछ है करने को। जिस दिन शरीर से मोह छूटेगा उसी दिन आत्मा से, भीतर से आवाज आयेगी। सचराचर जगत तुम्हारा है, तुम सचराचर जगत के हो।

मगर सोचो/कोरे मरने या कोरे जीने को
कब तक कौन गाये।
देखूं इसलिए/उदय होता चाँद/डूबता सूरज
मुरझाते फूल/चेहरे/बीमारों के
समझूँ आत्मा के रंग/चढ़ने दूँ पीली और सजीली
वह आभा प्राणों के चीवर पर/अपने/शरीर पर।[5]

मानवीयता की राह प्रशस्त करती यह कविता वसुधैव कुटुम्बकम का सपना सिरजती है। दूसरों का दुख अपना दुख कब होगा ? जीवन और मृत्यु के बीच उमड़ती हुई बानी में, भीतर की बेचैनी से उपजी है, इस संग्रह

की कविताएँ। इनमें श्रम पलता है। श्रम के साथ अंदर की ऊष्मा गीतों का सृजन करती है।

मजदूरों की/काम पर निकली टोलियों को
किरणों से भी ज्यादा सहारा/गीतों का है शायद
नहीं तो कैसे निकलते वे/इतनी ठंडी हवा में।[६]

जिस तरह पहाड़ की बैचेनी उससे निकले झरने में जाहिर होती है उसी तरह आदमी की आँखें ही आसपास की बैचेनी को व्यक्त करती है। मिश्र जी के शब्दों की ध्वनिमय लय से अव्यक्त प्रेरणा, सबको बाँध लेती है। प्रकृति की गुनगुनाहट में, मनुष्य की गुनगुनाहट है।

गुनगुना रही हैं/वहाँ मधुमक्खियाँ
नीम के फूलों को चूसते हुए/और महक रहे हैं
नीम के/फूल ज्यादा-ज्यादा/देकर मधुमक्खियों को रस।[७]

कवि ने जड़-चेतन में आद्योपान्त व्याप्त लय की सूक्ष्मता को पकड़ा है। वे आदमी और प्रकृति को एक ही मानते हैं। आदमी के अंदर वह सब कुछ घटित होता है, जो बीज, फल, फूल में घटित होता है।

समझ में आ जाना/कुछ नहीं है
भीतर समझ लेने के बाद/एक बैचेनी होना चाहिए
कि समझ/कितना जोड़ रही है/
हमें दूसरों से।
वह दूसरा/फूल कहो कविता कहो/
पेड़ कहो फल कहो/फसल कहो बीज कहो
आखिरकार/आदमी है।[८]

तो यह आदमी। इसे कितना दूर करेगी प्रकृति ? वह तो उसका अविभाज्य हिस्सा है। तभी तो वह कहता है – ''मैं वृक्षों को देख रहा हूँ/क्या वृक्ष भी मुझे देख रहे हैं।'' कवि अपनी आँखों में वृक्ष का मौन आमंत्रण छुपाये है। अपनी आँखों का उल्लास, उद्वेग उसके शब्दों से झरता है। कविता अगर प्रकृति की प्यासी है, तो प्रकृति भी कविता की प्यासी है। आकाश के तारे और चाँदनी यहाँ तक की पूरी मनुष्यता संवेदना की कविता की चाह रखती है। वह इस आनंद को पाना चाहती है –

तब मैंने/एक सितारे की तरफ/मुँह किया
और अपनी कविता/उसे सुनाई/साफ देखा मैंने
वह पहले से ज्यादा चमका/और अपनी गर्दन/
यो हिलाई/मानो कह रहा हो/और सुनाओ एक कविता
बहुत दिनों बाद/मैंने कुछ/सुनने लायक सुना है
तुमने इसके लिए चुनकर मुझे/लगभग एक जरूरतमंद को चुना है।[९]

कवि ब्रह्मांड की एक-एक रचना को महसूस करता है। सितारे भी उसकी कविता में सशरीर उपस्थित ही नहीं, प्रतिक्रिया भी व्यक्त करते हैं। यहाँ जड़-चेतन की सीमारेखा भी टूटती दिखाई देती है। कवि देखता है, कविता का आनंद उसके चेहरे पर। मानो सितारा उस आनंद में ओर-ओर कविता सुनना चाहता है।

कवि को फूलों की सुंदर, अम्लान चेहरा लिए प्रकृति आध्यात्म की ओर ले जाती है। आत्मा का संबंध उसे प्राणों की ओर लौटाता है। बुद्धि यहाँ स्तब्ध रह जाती है। ऐसे में मन की गति के साथ मति भी चल पड़ती है। फिर प्रकाश अंदर से फूटता है। तब सारी सृष्टि पारस्परिकता में व्याप्त होती दिखती है। यही लय, छंद और सुवास है, यही गति और ज्ञान है।

हम आनंद हैं/भीतर और/बाहर/अभी स्वर हैं/
अभी सुगंध है/अभी लय है अभी छंद है/
आग भी है एकाधबार/पारस्परिकता के आड़े आने वाले/
तत्वों के लिए/ज्यादातार पराग हैं।
कि उड़कर शून्य में/सुवास भर दे/
गति और गान दे दें/सन्नाटे को हमारे उड़ते हुए
छन्दों की दस्तक/दे दे मुरझाई हर चीज को
प्रकाश और पानी/और रस तक।[१०]

मुरझाई हर चीज को प्रकाश और पानी की जरूरत है। हर आदमी को पराग सा विस्तार मिले तभी वह सब ओर जीवन की सुवास फैला सकता है। कवि यहाँ सूक्ष्म परागगण की विस्तारित होने की प्रकृति को मनुज में आरोपित होते देखना चाहता है तभी सब ओर गुनगुनाहट होगी जीवन की ओर सन्नाटा एक छंद में बदल जायेगा। मुरझाने वाले को नयी ऊष्मा मिलेगी पानी और प्रकाश से। जल को लेकर भी कवि सचेत है। वह कहता

है कि निर्मलता की तरह धरती भी निर्मल हो। पर जल की वांछित निर्मलता के लिए आदमी क्या कर रहा है।

ओ पानी के अभ्यासी/धरती को जल की तरह
निर्मल करो अच्छा करो।[११]

फूल, गीत और धरती को कवि ने सहोदर कहा है। यही कारण है कि भवानी जी के काव्य का कथ्य फूल, किरण, पंछी पत्ते और सितारे हैं। स्वच्छन्द गीतों में पंछी उड़ान भरते हैं। नीले आसमान से जुड़कर धरती की गूँज वहाँ तक पहुँचाना चाहते हैं। यही कवि की ऊर्वोन्मुखता है। ओस जैसी स्वच्छ, स्निग्ध और शांत स्थिति में ही सूरज के प्रतिबिंबित होने की सामर्थ्य होती है इसीलिए कवि ओस होना चाहता है यह ओस सुबह के सूरज का प्रतिबिंब बनेगी।

मैं ओस बनूँगा/इस दिन की रात के लिए
और टपकूँगा रात भर घास पर
तब सूरज मुझमें/प्रतिबिंबित होगा कल सबेरे
और शायद परसों भी।[१२]

व्यक्ति से समाज और समाज से फिर व्यक्ति केन्द्र तक आना और व्यक्ति केन्द्र से स्वस्थ सामाजिकता को पहचानना, घटना-बढ़ना, क्षीणता-विपुलता, उठना-डूबना यही जीवन का रस है और परिवर्तनशील प्राणवान जीवन का लक्षण भी। इसीलिए कवि सुबह-शाम और दिन-रात के दुखों के बीच भी आशावादी स्वरों के साथ भोर की किरणों के बंधन में जीना चाहता है, यही भोर की किरण युवाशक्ति-जनशक्ति है, जो मशालों को ज्योति देती है।

समाज से व्यक्ति तक/व्यक्ति से समाज तक
यों कि रोज हो सकता है/ऐसा उठना और गिरना
निश्चित कुछ नहीं है/शरीर का/आत्मा का
बदलता है/सब/हर पल पर
इसी के बल पर/जीते हैं प्राणवान।[१३]

भवानी भाई प्रकाश, गति और ऊष्मा के गायक हैं, जो काली रात में दीपों का उत्सव मनाते हैं। उनकी रचनाएँ विजय यात्रा के पुरूषार्थी गीतों की तरह आस्था और उत्साह के गीत हैं। अंतःकरण के पास जो लेखनी रूपी अस्त्र हैं उससे वह सदैव यात्रा करता रहता है। अदंर से बाहर और बाहर से अंदर की ओर। बीज धरती पर बोये जाते हैं और अंकुरित होते हैं। लेखनी भी अंकुरण करती हैं जनमानस के विचारों को। यही विचार कृति को जन्म देते हैं। इसमें फसलें लहलहाती हैं, ऊष्मा की, पंछी चहचहाते हैं उमंगों के, फूल-फल लालिमा भरते हैं।

कविता और फूल/सब एक हैं
सबको बोना, बखरना, गोड़ना पड़ता है।[१४]

कवि का मन यहीं नहीं ठहरता। वह आदमी को फल-फूल पेड़ से पृथक नहीं समझता। उसकी बैचेन आत्मा कहने को विवश हैं।

समझ में आ जाना/कुछ नहीं है
भीतर समझ लेने के बाद/एक बैचेनी होनी चाहिए
कि समझ/कितना जोड़ रही हैं/हमें दूसरे से
वह दूसरा/फूल कहो/फसल कहो कविता कहो
पेड़ कहो, फल कहो/फसल कहो बीज कहो
आखिरकार/आदमी है।[१५]

निराशा जीवन का स्थायी भाव नहीं है। जिसने उल्लास का जीवन जिया है। प्रकाश के झरने को जाना है वह परिवर्तन भी जानना है और आशावादी स्वरों को भी। प्रकृति के कार्यकलापों की निरंतरता का संदेश तुम्हारे लिए ही है। उसे कब पहचानोगे ? सूर्य क्यों पुनः पुनः जीता है ? तुम्हारे लिए ही तो वह जुटा है। आज भले ही तुम उदास हो लो परन्तु तुम उदासी में ही जियो उसे मंजूर नहीं है। वह तुम्हारे लिए ही तो परिवर्तन लाने में भी जान से जुटा है इसलिए निराश होने की कोई जरूरत नहीं है, न ही इसकी तुम्हें इजाजत है। यहाँ कवि हक से यह कह रहा है -

सुनाई नहीं देता तुम्हें/ठीक स्वर/प्रतिक्षण बढ़ रहे उल्लास के
निराशा तुम्हारे मन में/इसलिए है/सूर्य अभी तक
हक नाहक नहीं जिए है/जुटा है/नित परिवर्तन लाने में वह
भूल मत करना निराश होने की/दिन-दो-दिन
उदास होने की/तुम्हें इजाजत है।[१६]

सूर्य जहाँ तुम्हारे लिए अच्छा समय लाने की कोशिश में है, वहाँ पृथ्वी तुम्हारे लिए ओर अधिक चिन्तित है। वह तुम्हारे बहुत नजदीक है, तुम उससे ही अपनी नींव बना पाते हो। वह अधिक सक्रियता से तुम्हें गतिशील रखना चाहती है। निरन्तर अपनी धुरी पर घूमती हुई वह अधिक महत्वपूर्ण है। जल, नमी, छाया और वातावरण सब कुछ उसी से है। धरती ही है कि पंछी पेड़ों पर चहचहाते हैं। इन पेड़ों को बचाने का, जिलाये रखने का दायित्व आदमी पर है। वह सहयात्री है इनका। फल लगने तक उसकी सुरक्षा कौन करेगा? समष्टि की चेतना आदमी में ही जाग्रत होना चाहिए। आदमी का सच्चा साथी पृथ्वी और उसके उपादान ही है। आदमी और पृथ्वी एक दूजे के लिए है।

शक्ति तुमने दी है मगर/साथी तो चाहिए आदमी को
आदमी की इस कमी को समझो
उसके मन की इस नमी को समझो
जो सार्थक नहीं होती बिन साथियों के।[१७]

आदमी और पृथ्वी दोनों के मन की नमी ही सृष्टि का कारण है। नमी ही है जो जीवन को ऊष्मा देती है। इस ऊष्मा से रिश्ते विस्तार पाते हैं। मानवीयता कुलाँचे भरती है। नमी चाहे धरती की हो या आदमी के मन की परिवेश को प्रसन्नता से भर देती है। मिश्र जी गिलहरी की दौड़-धूप में भी एक प्रसन्न लय और स्नेह भरी भावना का अहसास करते हैं। कवि ने जड़-चेतन में व्याप्त लय को सूक्ष्मता से पकड़ा है। आदमी अलग रहकर खड़ा नहीं रह सकता क्योंकि ईश्वर की इस सृष्टि का वह एक अनिवार्य अंश है, जड़-चेतन से जुड़ा हुआ। कवि विराट से मुड़कर 'अखिल' से एक रूप होना चाहते हैं, क्योंकि व्यक्ति का समष्टि से जुड़ना उसे चैतन्य बनाता है। यही जीवन की साधना है। ''छू जाए जोत को जोत/यही विलय है'' जाहिर है कवि 'लय' खोजते-खोजते समष्टि में विलय को महत्व देते हैं। लय-विलय का यह भाव परम प्रकाश में आत्मा का विलय है। यह परम प्रकाश चरम स्थिति है। कवि को मनुष्य से बहुत अपेक्षा है। वह उसकी उपस्थिति को सार्थक देखना-चाहता है। आदमी अपने प्रयास से क्या नहीं कर सकता। अपने अंदर के स्नेह की नमी से वह प्राणीमात्र से प्रेम कर सकता है। आपसी सद्भाव से वसुधा को एक स्नेहिल परिवार में बाँध सकता है। यहाँ उसके स्वर रहीम के ''मूल-मूल को सीचबो'' से मिल गए हैं जब वह ओजस्वी स्वर में कहता है -

जहाँ-जहाँ/उपस्थित हो तुम
वहाँ-वहाँ/बंजर
कुछ नहीं रहना चाहिए।[१८]

आदमी की सार्थकता ही इसमें है कि 'बंजर' को नमी देकर 'ऊर्वर' करे। उर्वरता ही गति है, वही जीवन को एक सुनहरे भविष्य की ओर ले जायेगी। जहाँ-जहाँ हो तुम वहाँ बंजर कुछ भी नहीं रहना चाहिए - इस कथन में बंजर का ध्वनूयार्थ एवं शब्दार्थ कितना गहरा है। कवि झकझोर देता है हर आदमी को। बंजरता कुछ नहीं दे सकती। प्रत्येक तन-मन को 'उर्वरता' के लिए प्रयासरत रहना चाहिए। यह सर्जन धरती के आँगन को जहाँ हरियाली से भर देगा। वहाँ हर इंसान को स्वस्थ तन सहित जीने का सामान मुहैया करायेगा। जियो और जीने दो की भावना वसुधैव कुटुम्बकम का पल्लवन करेगी। यदि एक आदमी एक वृक्ष लगाएगा, उसे पानी देगा तो नमी उसके आसपास की बंजरता को हर लेगी। वृक्ष पर फूल-फल आयेंगे। आदमी को तरोताजगी देंगे, भूख को मिटायेंगे। शीतल और चंचल हवा मन को प्रसन्नता देगी। यह एक वृक्ष.... एक-एक वृक्ष.... पूरे जंगल का अहसास करा सकता है। एक आदमी.... एक-एक वृक्ष। कवि की दृष्टि एक वृक्ष में ही पूरे वन का सौन्दर्य देख लेती है। लहर में ही नदी का समूचापन पा जाती है।

एक वृक्ष पूरा वन है/एक लहर नदी है पूरी की पूरी
उपस्थित क्षण भविष्य है समूचा
और अँधेरी दूरी भी अतीत की
मैं अकेला/एक मेला हूँ/गीत बनकर रह सकता हूँ
दूर से आकर भी/तुम्हारे भीतर का।[१९]

एकांत में होकर भी कवि वृहत्तर सामाजिक संदर्भों से कटकर नहीं रह सकता। चिंतन की प्रक्रिया अतीत वर्तमान और भविष्य को जोड़कर देखती है। भवानी मिश्र की कविता वस्तुस्थिति को अनदेखा नहीं करती क्योंकि सुबह होने की देरी पर फूल को अधीर बना देती हैं। फिर भी कवि का मन नर्मदा की एक लहर और किसान का सुख-दुख महसूसने को व्याकुल हो जाता है। वह वृक्ष बन जाता है ताकि पंछियों को आश्रय दे सके।

कवि अकेला होकर भी अपने अंतर में लोगों का समूह पाता है। इसी में व्यापकता है कि आत्म विस्तार में दूसरों से जुड़ता हैं। उसका 'अकेलापन' एकान्तिक साधना नहीं हैं वरन शांत, तटस्थ, निर्लिप्त रहकर 'अंधेरे के सत्य' को जानना है। समस्त लोगों का ख्याल उसकी एकान्तिक संपदा है। इसीलिए वह एक वृक्ष में ही पूरा जंगल देख लेता है और मांगता भी वही है।

ज्यादा नहीं मांगता मैं/वन का एक वृक्ष
होना चाहता हूँ मैं

पंछी का पंख भी नहीं/सिर्फ पर होना चाहता हूँ मैं
लहर होना चाहता हूँ/अपनी नर्मदा की
ज्यादा नहीं मांगता मैं/एक दिन मुझे/किसान का पूरा दुख दे दो।
एक दिन मुझे/किसान का पूरा सुख दे दो।[२०]

कवि किसानों का दुख-सुख दोनों बाँटना चाहता है। अपने को पूरा सौंप देना चाहता है वह केवल अंतर का शांत गहरा पानी रह जाए ताकि उसकी 'वाणी' स्नेहिल फुहारें देकर आदमी को, जमीन को.... तृप्त करती रहे।

कुछ न बचे भवानी का/सिर्फ अंतः सलिला का
शांत गहरा पानी रह जाये/भीतर
स्तब्ध वातावरण में जाग्रत/उसकी वाणी रह जाये।[२१]

केदारनाथ में २०१३ की तबाही का मंजर क्या आदमी के दंभ का परिणाम नहीं था? पहाड़ों की छाती पर कांक्रीट का जंगल उगाकर उसने अपने विजयी होने का शंखनाद किया था। पर प्रकृति न तो कभी दंभ करती है और न आदमी के दंभ को देखना-चाहती है। उसके तन-मन को घायल करने वाले को वह अपनी शक्ति का कायल करा देती है। वह आदमी की नादानी पर हँसती है। प्रकृति अपनी शक्ति का इस्तेमाल कर आदमी को दंड भी देती है। जब-जब उसका मन आहत होता है, वह जवाब देती है।

प्रकृति जानती है/कि हम अपनी गति के/घायल हैं
अपनी उसकी शक्ति के प्रति/हमें/कायल करना
विजय का दर्प/वह न हममें देखना चाहती है/न अपने में
सपने में भी/दर्प उसके मन में नहीं है/और यही वह चाहती
है हमसे/और हँसी जो आती है उसे
सो हमारी नादानी पर/जाकर देख लो चाहो तो इसे
कहीं भी/धरती पर आकाश में/पानी पर।[२२]

कवि को प्रकृति के हर रूप से प्यार है। फूल, फल, तितली, हवा, नदी सबको अपने अंदर महसूस करना चाहता है वह। वह हवा की दिनचर्या को जानना चाहता है वह कभी सोती भी है या नहीं ? चाँद से निर्मित ओस को चखना चाहता है। रात ने ही क्यों अपना सौन्दर्य लुटाया कुमुदिनी के लिए ? अखिल ने किस तकली पर कौन सा सूत काता हैं ? कवि मन की जिज्ञासा कविताओं में उतर आई है। प्रकृति का हर राग रंग यहाँ उपस्थित है।

फूल मुझे/लता से प्यारा है
और लता मुझे फूल से
कह सकते हो/मूल से फुनगी तक
सौन्दर्य सौन्दर्य है आखिर
हिर फिर कर/एक है/लता और फूल और मूल
जैसे मैं/और मेरा होश/और मेरी भूल
जोड़ूँ किसे/छोड़ूँ किसे/संभालूँ किसे मरोड़ूँ किसे
रात/हट रही है जितनी/पौ फट रही है उतनी
ये/सारे के सारे/चेली दामन के नाते हैं
जिनके सूत/अखिल ने/अपनी तकली पर काते है।[२३]

कवि अपने पुनर्जन्म में 'एक शब्द एक ध्वनि, एक नाद' होना चाहता है। इससे वह प्रकृति के विस्तार में स्वयं को देख पायेगा। वह असीम विस्तार पाना चाहता है। नक्षत्र और तारों की ज्योति की ललक, गौरेया और गरूड़ के पंखों की गति, ओस की बूँद और सीप का मोती होना चाहता है।

बड़ी गुंजाइश है इसमें/अपना लेता है/सबको
और सपना कर देता है/सब कुछ को/यह विस्तार
ओस की बूँद/सूरज की किरन/सॉंप और मोती
ग्रह नक्षत्रों तारों/और हमारी तुम्हारी/आँखों की जोती
उड़ान गौरैया की/और गरूड़ की/और सुपर सोनिक की
सुर्खी/नाजुक गुलाब की/और सहज सख्त मानिक की
बच्चे का रोना/माँ का हँसना/सबकी गुंजाइश है इसमें
अपना लेता है सबको/और सपना कर देता है सबको
यह विस्तार।[२४]

यह विस्तार सब कुछ समाहित कर लेता है, अपने में। इस विस्तार में कोई भेदभाव नहीं है, कोई

ऊँच-नीच नहीं है। सूर्य का भी स्वागत है, चंद्रमा का भी दुलार है। अपने अंदर के एकांत में जागृत कवि की वाणी भारतीय चिंतन की भूमिका पर मृत्यु को शरीर का क्षरण नहीं मानती, वह आत्मा के उस स्वरूप का प्रतिबिंबन देखती है, जो सम्पूर्ण ब्रह्मांड में व्याप्त है। प्रत्येक रंग, रूप, आकार और जड़-चेतन का विराटत्व कवि से जुड़े यही उसकी हार्दिक आकांक्षा है।

हर बदल रहा आकार/मेरी अंजुलि में
आना चाहिए/विराट हुआ करे कोई उसे मेरी इच्छा में
समाना चाहिए।[२५]

शब्द और कर्म का अद्वैत याने आचरण और सिद्धांत का अद्धैत एक महती साधना है। कवि चाहता है कि लोगों का यह सपना उसके बारे में झूठ न हो। जाहिर है भवानी मिश्र की कविता शब्द और आचरण को एकरूपता प्रदान करती है। जिंदगी में कविता और कविता में जिंदगी इसी का नाम है। अपने अस्तित्व को सबसे मिला देना याने 'समूचा किसी समूचे में खो जाना' कलाकार की सही काव्यात्मक परिणति है। इस स्थिति में कवि 'विचार नहीं बल्कि प्रेम' हो जाता है। शिखरस्थ चिंतन की परिणति भी तभी संभव है, जब दर्पण चेहरों की बजाय मनों को प्रतिबिंबित करने लगे। कवि साहसिकता देना चाहता है, जिससे लोग भयमुक्त होकर जी सके। उन्मुक्त होकर परिवर्तन के लिए गीत गाए।

अँधेरे में सीटी की तरह/चीरेंगी दूरियाँ मेरी आवाज
ज्यादातार लोग जानते हैं/कि सिर्फ जगा देने के लिए
नहीं बजाता सीटी यह आदमी/एक जगह आकर
इकठ्ठा हो जाने के लिए/बजाता है
और फिर इकठ्ठा लोगों को/अभय के जिरह-बख्तर से
सजाता है।[२६]

अभय का जिरह बख्तर जीवन को सहजता की ओर ले जाता है। कविता इस तरह समग्र जीवन को रूपायित करती है। कवि की अनुभूति विराट है। मिश्रजी ने जीवन की अनुभूतियों के माध्यम से मानव की अंतरात्मा को खोजने का प्रयास किया है। संवेदना की गहरी धार में उनकी जिंदगी डूबी, भीगी और उतराई है। उन्होंने परिवेश के प्रति जागरूकता और लोकजीवन से गहरी आसक्ति के कारण जीवन के आसपास की छोटी-छोटी चीजों को भी कविता में उठाया है। इसीलिए उनकी कविता सहज बातचीत की धुन पर बहती प्रतीत होती है। वे कविता को उस ऊँचाई पर ले जाते है जहाँ व्यक्ति सामान्य भावभूमि पर पहुँचकर हर व्यक्ति के मनोजगत से तादाम्य स्थापित करता है। मानवीय संवेदनाओं से युक्त भवानी भाई की कविता जीवन की सहज और सार्थक गतिशीलता की केन्द्र है।

'शरीर कविता फसलें और फूल' कविता कृति जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि भवानी भाई की कविता जमीन से जुड़ी है। वह धरातल की मिट्टी और पानी से ऊर्जा पाती है। मनुष्य जीवन के लिए भी इसी की दरकार है। आज जब पर्यावरणीय प्रदूषण से जगत जूझ रहा है ऐसे समय में यह कविता कृति ओर भी प्रासंगिक हो उठी है। कवि तो शरीर को ही कविता मानता है, उसी से फसलें और फूल हैं। आदमी के मन को, उसके भावों के जगाने का, उनको स्फुरित करने का काम यह धरती और प्रकृति ही तो करती है। ये पहाड़, जंगल, फूल और उनका रंग ही तो ऊष्मा है। जिससे आदमी में स्नेह पलता है एवं शक्ति जन्मती है। कवि का 'स्व' प्रकृति में ही अपनी व्यापकता पाकर 'पर' में समाहित हो जाता है। वह देश और समय की सीमा में नहीं बँधता। उसमें विशद विस्तार होता है। उसकी वाणी हर हृदय को छूने और सहलाने वाली होती है। मानव कल्याण ही उसका ध्येय है। इस कृति में प्रकृति और मनुष्य समरस होकर उपस्थित हैं। फूल, गीत और धरती को कवि ने कविता की धरोहर कहा है।

मिश्र जी को शब्दों की आत्मा की सही पहचान है। भाषा के सटीक प्रयोग में वे माहिर हैं। किसी वाद के दायरे से अलग उन्होंने अपनी शैली खुद गढ़ी है। शब्दों की प्रवहमान धारा में कवि उस ऊँचाई तक पहुँच जाता है, जहाँ ध्वनियों के द्वारा रूप-अरूप, नाद-अनहद सब स्पष्ट हो जाते हैं। यही कारण है कि मिश्रजी ने शब्दों की सार्थक पहचान की है, जिससे व्यक्त और अव्यक्त अर्थ खुल सके। अलंकारों के छलों से दूर, अकृत्रिम और सहज प्रभावित करने वाली भावधारा है उनकी कविता। जिसमें छंदों का भी कोई रूप निर्धारण नहीं हैं। उनकी सहज भाषा यथार्थ स्थिति का सीधा साक्षात्कार कराने की क्षमता रखती है तथा उनकी अनुभूति और समझ का सही बयान करती है। भवानी प्रसाद मिश्र की कविताएँ "लय में जीवंत और स्वर में सधी" हुई है। उनमें एक 'बानी' है जो कोमलता के साथ अपने प्रवाह में दूर तक बहा ले जाती है।

भवानी प्रसाद मिश्र की संवदेना और उनकी शैली उनके काव्य जगत को प्रासंगिक, उन्मुक्त और मानवीय बनाने में समर्थ है। उनकी कविता स्वयं के मनोभावों की प्रस्तुति होते हुए भी जन-जन के भावों को व्यक्त करती है। मिश्रजी को जन्म से ही नर्मदा का गत्यात्मक सौन्दर्य और विंध्या का हरापन मिला था अतः वे उसमें रमे, रचे और पगे। वे प्रकृति के दृश्यों को इस तरह शब्दों में उतारते है कि वे जीवन के यर्थाथ धरातल पर उतर आते हैं। कवि का शिल्प, कल्पना, कौतुहल और लय को एक साथ संपृक्त करता है, जिससे कविता अपना स्वत्व पाती है। कवि के पास पानी से भी तरल बानी है। उसे विश्वास है यह तरल 'बानी' स्वतः ही भविष्य को तलाशती बढ़ती जायेगी। कितनी भी तेज धार बहे, हम समूचे बह जाये उसमें, पर भवानी भाई के 'शब्द' बचे रहेंगे। उनकी सहजता बहते पानी से शब्दों में ढलकर अचरज का विषय बनेंगी।

कुल पानी से भी तरल चीजें
बहते पानी पर
बानी पर हमारी ताज्जुब करेंगी पीढ़ियाँ।[२७]

कवि की यह कृति 'शरीर कविता फसलें और फूल' ऐसी ही 'बानी' के कारण साहित्य स्मृति में सदैव रहेगी। शरीर को ही कविता मानकर कवि ने फसलें, फल, फूल, वृक्ष और आदमी का एकात्म स्थापित किया है। जब 'शरीर' आदमी को प्यारा है तो उसे फल, फूल फसलें और जंगल सहित समस्त ब्रह्मांड प्यारा है। यही भाव जन-जन में व्याप्त करने के लिए वह समवेत स्वरों में सामूहिक चेतना का आग्रह करता है। इस परवर्ती कृति में कवि ने शब्द की उस महत्ता को स्थापित किया हैं, जो कर्म में ढलकर ही पूर्णता की ओर प्रस्थित होती है। शब्द और कर्म फिर पृथक कैसे हुए ? इन दोनों का आग्रह 'श्रम' के लिए है इसीलिए कठोर श्रम गीत की ओर आकृष्ट होता है। गीत की मधुर ध्वनि (हुंकारा) श्रम के पसीने को हर लेती है और फिर 'आदमी' चल पड़ता है उन स्वरों के साथ जो उसे ऊर्जवित करते हैं। इस प्रकार कवि की यह प्रौढ़ कृति सरल मन की सहज प्रस्तुति है। इसमें नदियों की कल-कल है, झरनों का संगीत है, सूर्य का स्वागत है, पानी की निर्मलता है। फूलों का पराग के माध्यम से विस्तार है, प्रकृति की चाह है और सब कुछ आदमी को पानी की तरह निर्मल बनाने के लिए है ताकि ब्रह्मांड उसका घर हो सके।

संदर्भ :

०१.निमंत्रण - भवानी प्रसाद मिश्र रचनावली : छह, संपादक विजय बहादुर सिंह, पृष्ठ ३७६, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, दरियागंज, नई दिल्ली, वर्ष २००२.
०२.आगमनी - वही, पृष्ठ ३८२
०३.गांधी पंचशती - वही, पृष्ठ ३०३
०४.आत्मा का रंग - वही, पृष्ठ ३८६
०५.आत्मा का रंग - वही, पृष्ठ ३८७
०६.शीत आघात - वही, पृष्ठ ३६६
०७.शरीर कविता फसलें और फूल - भवानी प्रसाद मिश्र, पृष्ठ १८.
०८.आत्म-अनात्म - वही, पृष्ठ ३६१
०९.प्यासी प्रकृति - वही, पृष्ठ ३७३
१०.जैसे ज्वालामुखी - वही, पृष्ठ ३६४
११.निमंत्रण - पृष्ठ ३७६
१२.शरीर कविता फसलें और फूल - भवानी प्रसाद मिश्र, पृष्ठ ५२.
१३.जीवन का रस - वही, पृष्ठ ३८१
१४.अंधेरी कविताएँ - भवानी प्रसाद मिश्र, पृष्ठ १२.
१५.आत्म-अनात्म - वही, पृष्ठ ३६१
१६.शरीर कविता फसलें और फूल - भवानी प्रसाद मिश्र, पृष्ठ ८४.
१७.शरीर कविता फसलें और फूल - भवानी प्रसाद मिश्र, पृष्ठ ६३.
१८.शरीर कविता फसलें और फूल - भवानी प्रसाद मिश्र, पृष्ठ ६८.
१९.शरीर कविता फसलें और फूल - भवानी प्रसाद मिश्र, पृष्ठ १०१.
२०.ज्यादा नहीं - वही, पृष्ठ ३६३
२१.वाणी रह जाये - वही, पृष्ठ ३८४
२२.प्रकृति - वही, पृष्ठ ३८६
२३.हिर-फिर कर - वही, पृष्ठ ३६८
२४.यह विस्तार - वही, पृष्ठ ३६२
२५.शरीर कविता फसलें और फूल - भवानी प्रसाद मिश्र, पृष्ठ १४७.
२६.सीटी की तरह - वही, पृष्ठ ३६५
२७.पुरानी यादें - वही, पृष्ठ ३६३
२८.भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य यात्रा - डॉ. संतोष कुमार तिवारी